वेदगत पर्यावरण समीक्षा

Dharmendra Kumar Pathak

Department of Veda, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

In Indian literature Vedas are the earliest and the richest treatise. The meaning of Veda is knowledge, Jnana, so these Vedas are the repositories of all kinds of true knowledge, are eternal perennial source of all learning. Both Vidyas Para and Apara are here. These Vedas do not only present spiritual matter but also describe the fundamental principles of material sciences.

The word 'पर्यावरण' Paryavarana is derived root verb √वृ to envelop with prefixes परि Pari, आ a and suffix Lyut So all things animate and inanimate surrounding the man, are the forming factors of this Paryavarana. Generally Paryavarava is considered as synonym of environment but this Paryavarana contains very broad meaning.

These Vedas have been realised by the seers and not composed. So these are free from all errors and are authentic. Our seers lived in the hermitages, in Asramas in a very pure and serene atmosphere of Nature.

They very minutely observed, perceived the working of Nature and thus became very thoroughly fully acquainted with it. They got direct and first hand contact with Nature and realised that human life is totally dependent on Nature and basically Nature is boufltiful helping. It is very generous and kind like a foster mother and provides all materials needful for life. It fulfills all our requirements. Rsi Atharvan, therefore, prays Earth as adorable Mother- and so mainly the Rigveda is the worship of Nature. This Nature should be worshipped and not be conquered and this worship is the easiest way in protecting Paryavarana and in true sense the worship of Nature, protection of Paryavarana is the protection of humanity.

वेद भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थरत्न हैं। सत्यधर्मा ऋषियों के द्वारा अपनी तपश्चर्या एवं सतत् साधना से साक्षात्कृत ज्ञानराशि ही वेद है। "ऋषयोमन्त्रद्रष्टार:" ऋषियों द्वारा प्रत्यक्षीकृत होने से वेद सकल ज्ञान-निधान एवं प्रामाणिक हैं। इस प्रकार भारतीय मनीषा की सर्वोत्तम महनीय उपलब्धि वेद है। इन वेदों में भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। वास्तव में वेद मानव जीवन से सर्वथा ओतप्रोत हैं। इसीलिए परा-अपरा उभय विद्याओं का इसमें साधु निरूपण है। मानव-जीवन के सभी पुरुषार्थों की सिद्धि में इसकी सार्थकता है। इसी दृष्टि से मनुष्य के लौकिक जीवन से सम्बद्ध सभी विषयों को भी यह वेद प्रस्तुत करता है।

पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप-

परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक वृञ् वरणे धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से यह पर्यावरण शब्द निष्पन्न हुआ। इसका अभिप्राय है चारों तरफ का वातावरण जो मनुष्य को सभी ओर से आवृत किये हुए है जिनसे मनुष्य सभी तरफ से घिरा हुआ है वहीं पर्यावरण है। पर्यावरण का पर्यायवाची समानार्थक शब्द है वातावरण परन्तु यह पर्यावरण अपने में बहुत व्यापक अर्थ समाहित किये हुए है। इसके अन्तर्गत पृथिवी, जल, उर्जा, वायु, आकाश, जलवायु, ऋतुयें, वनस्पति, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सभी समाहित हैं। इस प्रकार मानव-जीवन को सभी तरफ से आवृत करने वाला (घेरने वाला) प्राकृतिक परिवेश ही पर्यावरण है। इसीलिए मनुष्य के जीवन तथा विकास को प्रभावित करने वाली सभी दशायें पर्यावरण है, इसीलिए मनुष्य तथा पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन पर्यावरण विज्ञान है। पर्यावरण से अभिप्राय है प्रकृति प्रदत्त समस्त भौतिक सामाजिक वातावरण के साथ ही जैविक स्थिति। भूमि, लता, वनस्पति, वृक्ष, वन, पर्वत, जल, वायु तथा पशु-पक्षी आदि अन्य जीवन सभी मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं।

इस प्रकार वेदों में ऋग्वेद प्रकृति उपासना का विश्व वाङ्मय का आदिम एवं प्रथम ग्रन्थ हैं। साथ ही पर्यावरण के गम्भीर चिन्तन गहन अध्ययन एवं जागरूक रूप से संरक्षण का भी प्रथम ग्रन्थ हैं। इस तरह वेदोक्त ऋषियों ने अपनी साधना

Vijana Bharati

तपश्चर्या से इस सत्यार्थ का साक्षात्कार कर लिया था कि पर्यावरण रक्षा ही है स्वात्मरक्षा। यथा-

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।[१]
नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ।।[२]

अर्थात् हे वायु! तुम्हारे पास अमृत का खजाना है, तुम ही जीवनशक्ति के दाता हो, तुम संसार के पिता, भाई और मित्र हो। तुम सब रोगों की औषधि हो। वायु में अमृत अर्थात् आक्सीजन है, उसे नष्ट न होने दें। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई कार्य न करें जिससे वायु में आक्सीजन की कमी हो।

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः। पीयूषं द्यौः।[३]

अर्थात् पृथ्वी माता हमें मधुर दूध एवं अन्न, जल देती है, द्युलोक अमृत देता है, यह अमृत दो रूपों में है-सूर्य से उर्जा एवं प्रकाश तथा बादलों से पवित्र जल। इसीप्रकार अथर्ववेद में आया है यथा-

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवन्त्वन्तरिक्षम् ।।[४]

अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्ष, ओषधियाँ और जल ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें, ये प्रदूषण से मुक्त होकर जीवन को सुखमय बनाने में साधक हों। वेदों के अनेक मन्त्रों में द्युलोक को पिता और पृथिवी को माता कहा गया है। यदि द्युलोक या अन्तरिक्ष प्रदूषित होता है तो ऊर्जा के स्रोतों को हानि पहुँचती है और यदि भूमि प्रदूषित होती है तो मानवजीवन संकटापन्न होता है। इसलिए दोनों के संरक्षण पर बल दिया गया है। अथर्ववेद का कथन है कि -*''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''*[५] अर्थात् पृथिवी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। एक स्थान पर ऐसा भी वर्णन मिलता है कि *''भूमिर्माता, भ्रान्तरिक्षम् , द्यौर्नः पिता''*[६] अर्थात् पृथिवी माता है, अन्तरिक्ष भाई है और द्युलोक पिता हैं। जिस प्रकार माता-पिता की सेवा करना, उनको कष्ट से बचाना और उनकी रक्षा करना पुत्र का कर्तव्य है, उसी प्रकार प्रकृति की रक्षा करना उसको प्रदूषण से बचाना और उनके उपहारों का सदुपयोग करना हमारा परम कर्तव्य है।

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृद्
अग्निः पिपर्तु अयसा सजोषाः।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं
दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ।।[७]

उपरोक्त अथर्ववेदीय मन्त्र में द्यु-भू की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भूमि हमें हरियाली और सस्य-सम्पदा देती है। अग्नि लौहतत्त्व देता है, वृक्ष और वनस्पतियाँ सूर्य की किरणों का सहयोग लेकर कल्याणकारी शक्ति प्रदान करती हैं। यह शक्ति आक्सीजन (प्राणवायु) के रूप में प्राप्त होती है।

वेदों में वायुमंडल की शुद्धि के लिए द्यावापृथिवी के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। द्यावापृथिवी में सूर्य आदि लोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों का समावेश है। द्यावापृथिवी का परस्पर सम्बद्ध हैं। इनमें पोष्य-पोषक सम्बन्ध है। सूर्य ऊजा का स्रोत है, अन्तरिक्ष वृष्टि का कारक है और पृथ्वी ऊर्जा और वृष्टि आदि का उपयोग कर अन्नादि की समृद्धि से मानवजीवन को संचालित करती है। ये तीनों परस्पर अनुस्यूत हैं। वायुमंडल प्राण ऊर्जा देकर मानवमात्र को जीवित रखे हुए हैं। वृक्ष, वनस्पति आक्सीजन देकर मानव को शक्ति प्रदान करते हैं। वृक्ष-वनस्पतियों का जीवन वर्षा पर निर्भर है, अतः वृष्टि चक्र को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए यज्ञ आदि की उपयोगिता पर बल दिया गया है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से समन्वित रूप से मानव-जीवन का संचालन करते हैं। इनका सन्तुलन जब बिगड़ता है तो विनाश की प्रक्रिया शुरू होती है। इस सनतुलन को बिगाड़ने का कारण प्रदूषण है। इसलिए इसे प्रदूषण मुक्त रखने के लिए कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं। यथा-

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षताम् अहंसो रिषः।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत।।[८]
द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः।
आपः शान्तिः, ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः।।[९]

अर्थात् ऋग्वेद के एक मन्त्र में चेतावनी दी गई है कि द्यु-भू चेतन तत्त्व हैं, ये हमारे रक्षक हैं। यदि इनको प्रदूषित किया जात है तो विनाश, विपत्ति और संकट (निर्ऋति) उपस्थित होगें। इसी तरह यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में द्यु-भू अन्तरिक्ष, जल, ओषधियों और वनस्पतियों से प्रार्थना की गई है कि वे प्रदूषण-मुक्त होकर हमारे लिए सुख शान्ति प्रदान करें। एक और मन्त्र में बहुत अच्छी बात कही गयी है कि द्यु-भू के साथ हमारा बराबरी का सम्बन्ध है। यदि हम द्यु-भू कि रक्षा करेंगें तो वे भी हमारी रक्षा करेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम प्रकृति का सहयोग करते हुए द्यु-भू को प्रसन्न रखेंगे तो वे भी हमें सुखी रखेंगे। यदि हम उनको कष्ट देंगे तो वे भी हमें दुःख या विपत्ति देंगे। इसलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि तुम द्यु-भू, अन्तरिक्ष

Vijana Bharati

और वनस्पतियों को हानि न पहुँचाओं। इस तरह यजुर्वेदीय अनेक मन्त्रों में प्रदूषण निरोधक वाक्यों का प्रयोग हुआ है। यथा-

क. द्यां मा लेखी:, अन्तरिक्षं मा हिंसी:, पृथिव्या संभव।[१२]

ख. अन्तरिक्षं दृंह, अन्तरिक्षं मा हिंसी:।।[१३]

ग. दिवं दृंह, दिवं मा हिंसी:।।[१४]

घ. उद् दिवं स्तभान, अन्तरिक्षं पृण।।[१५]

ङ. दिवं जिन्व, अन्तरिक्षं जिन्व।।[१६]

च. पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसी:।।[१७]

अर्थात् द्युलोक को हानि मत पहुँचाओं, अन्तरिक्ष को प्रदूषित न करो, पृथिवी का सहयोग करते रहो। अन्तरिक्ष को प्रदूषण-मुक्त करके सुदृढ़ करो, अन्तरिक्ष को कोई हानि न पहुँचाओ। द्युलोक को दृढ़ करो, द्युलोक को प्रदूषण मुक्त रखते हुए पुष्ट करो। पृथिवी को प्रदूषण से मुक्त रखो आदि मन्त्रों का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेद के एक महत्वपूर्ण मन्त्र में उल्लेख मिलता है कि हम पृथिवी के जिस भाग को खोदते हैं, उसे फिर पूरा करें। किसी भी अवस्था में पृथिवी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचाओ। इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथिवी से रत्न, कोयला, गैस, पेट्रोल आदि जो भी पदार्थ निकालते हैं, उससे रिक्त हुए स्थान को फिर पूर्ण करें, अन्यथा भू-संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प, भूभाग का दब जाना, जलादि के स्रोतों का सूख जाना आदि संकट उत्पन्न होते है।[१८]

शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ***"ओषधयो वै पशुपति:"*** वृक्ष-वनस्पति (ओषधियाँ) पशुपति अर्थात् शिव के रूप हैं। यजुर्वेद के रुद्राध्याय (अध्याय १६) में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि, लता, गुल्म और कृषि एवं क्षेत्र का स्वामी बताया गया है। भगवान् शिव का शिवत्व यही है कि वे विष को पीते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष-वनस्पति ये शिव के रूप हैं। ये कार्बन डाई-आक्साईड रूपी विष को पीते हैं और आक्सीजन रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते हैं। यह इनका शिवरूप है।

इस प्रकार आरोग्यमय आह्लादमय सुदीर्घकाल तक स्वकीय जीवन-यापन के लिए पर्यावरण का संरक्षण सर्वथा अनिवार्य है। पर्यावरण रक्षा ही है स्वयं की रक्षा। वैदिक ऋषि-मनीषियों में पर्यावरण संरक्षण की यह चेतना सहज रूप से विद्यमान थी एवं इसके संरक्षण के प्रति वे जागरूक एवं सचेष्ट थे। अतएव प्रकृति के समस्त उपादानों को उन्होंने देवत्व प्रदान कर दिया। अग्नि, सूर्य, उषस् , नदी, लता, वनस्पति सभी में दैवत बुद्धि हो गयी। प्रकृति के इन उपादानों से जीवनोपयोगी वस्तुयें प्राप्त होती हैं। वायु, जल, अन्नादि जीवन धारण के लिए अनिवार्य थे इसीलिए श्रद्धा एवं उपकारिता कृतज्ञता भाव से सभी की उपासना की। इन प्राकृतिक उपादानों के पूजन का अभिप्राय था इनको दूषित न करना स्वच्छ बनाए रखना। इस प्रकार पर्यावरण रक्षण का अर्थ ही है स्वकीय जीवन की रक्षा के अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का पूर्ण विकास तथा अमृतरूप शक्ति का संचय। इस रहस्य से हमारे ऋषि-महर्षि सुपरिचित थे। पर्यावरण रक्षण की सहज स्वाभाविक चेतना उनके भीतर विद्यमान थी और तदनुरूप उनके क्रिया-कलाप होते थे। उनका जीवनदर्शन पर्यावरण सम्मत था। इसीप्रकार वास्तव में मानव तथा प्रकृति का भी अन्योनाश्रित परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है और यही सम्बन्ध है पर्यावरण। मनुष्य तो सर्वतोभावेन सभी तरफ से प्रकृति द्वारा परिवेष्ठित है और कल्याणकारी वरदा प्रकृति से वह संरक्षित एवं संवर्द्धित है। इसलिए मानव जीवन की रक्षा हेतु प्रजापति ब्रह्मा ने मनुष्य के चारों तरफ प्रकृति का सृजन किया है जो सभी प्रकार से मनुष्य का रक्षण करती रहती है। इसलिए यदि मनुष्य द्वारा प्रकृति रक्षित है तो रक्षित की हुई यहीं प्रकृति मनुष्य का संरक्षण संवर्धन करती है। यथा "धर्मो रक्षति रक्षित:" रक्षण किया गया यही धर्म हमारी रक्षा करता है। इसलिए पञ्चमहाभूतों की कल्याणकारिणी संगति पर्यावरण है। परमात्मा ने अपनी सर्वोत्तम सृष्टि मानवों के परिवर्द्धन संरक्षण हेतु जो व्यवस्था बनाई है वहीं है प्राकृतिक पर्यावरण। इसलिए दैवतभाव से यह पर्यावरण उपास्य एवं संरक्षणीय है।

सन्दर्भ :

१. ऋग्वेद १०.१८६.३
२. ऋग्वेद ६.३७.३
३. ऋग्वेद १०.६३.३
४. अथर्ववेद २०.१४३.८
५. अथर्ववेद १२.१.१२
६. अथर्ववेद ६.१२०.२
७. अथर्ववेद ५.२८.५
८. ऋग्वेद १०.३६.२
९. यजुर्वेद ३६.१७
१०. यजुर्वेद २.९
११. यजुर्वेद ११.४५
१२. यजुर्वेद ५.४३
१३. यजुर्वेद १४.१२
१४. यजुर्वेद १५.६४
१५. यजुर्वेद ५.२७
१६. यजुर्वेद १५.६
१७. यजुर्वेद १३.१८
१८. अथर्ववेद १२.१.३५

Vijana Bharati